**ओ३म्**

**‘ईश्वर और जीवात्मा का परस्पर सम्बन्ध’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

हम अनुभव करते हैं कि यह विषय मनुष्यों के विचार करने व जानने हेतु उत्तम विषय है। यह तो हम जानते ही हैं कि ईश्वर इस सृष्टि का कर्ता व रचयिता है व इसका तथा प्राणी जगत का पालन करता है। यह भी जानते हैं कि जब इस सृष्टि की अवधि पूरी हो जायेगी तो वह इसकी प्रलय करेगा। महर्षि दयानन्द ने इन प्रश्नों का सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में विस्तार से समाधान किया है। **प्रश्न उत्पन्न होता है कि ईश्वर ने इस सृष्टि वा ब्रह्माण्ड को क्यों बनाया?** इसका उत्तर भी हमें वेद व वैदिक साहित्य से मिलता है कि ईश्वर ने इस सृष्टि को जीवों के सुख के लिए अर्थात् जीवों ने पूर्व कल्प वा सृष्टि में जो व जैसे कर्म किये थे जिनका कि भोग अर्थात् कर्मों का फल भोगना शेष है, उन बचे हुए कर्मों के फलों को देने के लिए इस सृष्टि की रचना की है। **ईश्वर व जीव का स्वरुप कैसा है?** इसका संक्षिप्त उत्तर यह है कि ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरुप है। वह अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अजर, अमर, अजन्मा व अनन्त है। वह निराकार, सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी है। वह सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान भी है। ईश्वर सब जीवों का मित्र है, दयालु है, न्यायकारी है, अनुपम है, अभय व पवित्र स्वभाव वाला और जीवों के कर्मों का यथावत्, न कुछ कम और न कुछ अधिक, फल देने वाला है। वह जीवों के किसी कर्म को क्षमा नहीं करता। बुरे कर्मों को मनुष्य या तो प्रायश्चित कर भोग सकते हैं या फिर ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त कर्म का फल पाकर वा उसे भोग कर ही कर्म के प्रभाव से बच सकते हैं। दुःख न चाहने वाले मनुष्य के लिए यह उचित है कि वह सत्य और असत्य का विचार कर कर्मों को करें जिससे उसे बुरे कर्मों के कारण दुःख न भोगने पड़े।

 जीवात्मा इस ब्रह्माण्ड में संख्या की दृष्टि से अनन्त हैं। सब जीवात्मायें आकृति व सत्ता की दृष्टि से एक समान हैं। जीवात्मा भी एक अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अविनाशी व अमर सत्ता है। यह न कभी बच्चा होता है, न कभी युवा और न कभी वृद्ध। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग कर नये वस्त्रों को धारण करता है उसी प्रकार से जीवात्मा भी शरीर के वृद्ध, रोगी व शक्तिहीन हो जाने पर ईश्वर की व्यवस्था से मृत्यु को प्राप्त होकर जन्म-जन्मान्तर के अवशिष्ट कर्मानुसार नये शरीरों को प्राप्त करता है। जीवात्मा अणु परिमाण वाली अति सूक्ष्म सत्ता व पदार्थ है जो आंखों से देखा नहीं जा सकता। मनुष्यों के परस्पर माता-पिता, मामा, मौसा, चाचा, ताऊ, फूफा, आचार्य, गुरु, राजा, न्यायाधीश आदि अनेक सम्बन्ध होते हैं, वह सभी सम्बन्ध मनुष्य शरीर के कारण हैं जो जन्म से पूर्व नहीं होते और मृत्यु के बाद भी नहीं रहते। मनुष्य की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी पुत्रों आदि द्वारा अन्त्येष्टि संस्कार करने के बाद उस मृतक शरीर की जीवात्मा से परिवारजनों के सभी सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। अतः उसकी बरसी, श्राद्ध व अन्य कोई कर्तव्य मनुष्य के लिए शेष नहीं रहता। इस प्रकार के कार्य केवल अविद्या व मिथ्या विश्वासों के कारण किये जाते हैं जिसे करना धर्म कदापि नहीं है। इनसे लाभ तो कुछ होता नहीं अपितु हानि होने की सम्भावना होती है। जीवात्मा अणु प्रमाण होने के कारण एकदेशी व ससीम है। ज्ञान की दृष्टि से यह अल्पज्ञ है क्योंकि ससीम व एकदेशी सत्ता अल्पज्ञानी व अल्पज्ञ ही होती है। इसके विपरीत निराकार व सर्वव्यापक होने से ईश्वर सर्वज्ञ है। अल्पज्ञता के कारण ही जीवात्मा अनेक बार सत्य व असत्य का निर्णय नहीं कर पाता और अज्ञानता व स्वार्थ अथवा मोह व लोभ के कारण अशुभ कर्म कर बैठता है जिसके कारण यह कर्म फल बन्धन में फंस कर संसार में नाना योनियों में से किसी एक वअ अनेक में अपने कर्मानुसार जन्म लेता और कर्मों को भोग कर ईश्वर की व्यवस्था से उन्नत योनि में जन्म ग्रहण करता है।

 ईश्वर व जीवात्मा के स्वरुप व गुण, कर्म, स्वभाव को कुछ-कुछ जानने के बाद इन दोनों के परस्पर सम्बन्धों की भी चर्चा कर लेते हैं। **ईश्वर व जीवात्मा का मुख्य सम्बन्ध व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है।** ईश्वर सर्वातिसूक्ष्म, निराकार और सर्वव्यापक होने से सर्वत्र व्यापक एवं सर्वान्तर्यामी है। वह सभी सूक्ष्म जीवात्माओं के अन्दर व भीतर भी विद्यमान रहता है। जीवात्मा सर्वव्यापक ईश्वर में व्याप्य है अर्थात् उसके भीतर व बाहर ईश्वर विद्यमान रहता है। जीवात्मा किसी भी प्राणी योनि में हो व मृत्यु के बाद माता के गर्भ में जाने से पूर्व की स्थिति में हो, दोनों व सभी स्थितियों में ईश्वर उसमें अर्थात् उसकी आत्मा के भीतर हर क्षण व हर पल विद्यमान रहता है। यही कारण है कि ईश्वर अपनी सर्वव्यापकता से सभी अनन्त जीवों के कर्मों व अन्तरस्थ भावों को यथावत् जानता है। इस ज्ञान के कारण ही वह जीवात्मा को उसके जन्म जन्मान्तर के यथावत् फल देता है। कोई उसके न्याय व कर्म-फल व्यवस्था से बचता नहीं है। इसको पूर्ण रूप से जानकर और इसका पालन करते हुए हमारे ऋषि मुनि जिनमें ऋषि दयानन्द भी सम्मिलित हैं, ने अपना जीवन व्यतीत किया जो हमारे व संसार के सभी लोगों के लिए आदर्श व अनुकरणीय है।

 सबसे बड़ा होने के कारण ईश्वर को ब्रह्म भी कहा जाता है। वह माता व पिता के समान हमारा पालन व पोषण करता व कराता है इसलिये उसे भी माता-पिता कहलाने व हमारे द्वारा कहे व माने जाने का हमारा कर्तव्य है। वह भाई व बन्धु के समान हमारी रक्षा व मार्गदर्शन भी करता है। वह गुरुओं का भी गुरु आदि गुरु है। वह जीवात्माओं के आत्मस्थ स्वरुप से सत्यासत्य का बोध कराता वा प्रेरणा करता रहता है अतः वह हमारा गुरु व आचार्य है। इसी प्रकार से ईश्वर में अनेक संबंध घटते हैं जिसको जानकर हमें उसका उपकार मानना चाहिये और उसकी वेद वचनों से स्तुति आदि करनी चाहिये। वही परमात्मा हम सब जीवों द्वारा उससे प्रार्थना करने व कुछ मांगने का अधिकारी है। हमें उससे ज्ञान, बुद्धि, बल, आरोग्य सहित परोपकार, सेवा, सन्ध्या, उपासना व यज्ञ आदि कार्यों को करने में सहायक होने की प्रार्थना करनी चाहिये। इससे न केवल हम अहंकार व पापों से मुक्त होंगे अपितु इससे हमारी अविद्या का नाश होकर हम धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं। अतः ईश्वर-जीव-प्रकृति के स्वरुप व ईश्वर-जीव के परस्पर संबंध को जानकर अपना कर्तव्य निर्धारित कर हमें उसका पालन करना चाहिये जिससे हमारा अभ्युदय व निःश्रेयस का मार्ग प्रशस्त होगा। यही सर्वश्रेष्ठ वैदिक जीवन का आदर्श साधन व जीवन-पद्धति है। यह सभी बातें मत-पन्थ-सम्प्रदाय-मजहब आदि से निरपेक्ष सबके लिए समान रूप से मानने व पालन करने से सार्वभौमिक हैं। इनका अनुसरण ही सच्चा धर्म और इसके विपरीत आचरण व मान्यतायें ही अधर्म हैं। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि ईश्वर से हमारा शाश्वत सम्बन्ध है जो सदा से है और सदा रहेगा, कभी अवरुद्ध व अवछिन्न नहीं होगा। इस कारण हम उसके न्याय से बच नहीं सकते। अतः हमें प्रत्येक अवस्था में उसका कृतज्ञ वा विनीत रहना है। इसी में हमारी भलाई है।

 हम आशा करते हैं कि इस संक्षिप्त लेख से पाठक कुछ लाभान्वित हो सकते हैं। इति।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**